सूफी काव्य साहित्य में विरह-तत्व

बीज शब्द : सूफी साहित्य, विरह काव्य, मलिक मुहम्मद जायसी, प्रेमाख्यान।

ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net

A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research

शोध संचयन

सूफी काव्य में विरहानुभूति आध्यात्मिक साधना का प्रथम सोपान है। तुलसी की सीता और जायसी की नागमती के विरह भाव में अद्‌भुत समानता है। सूफी कवियों के बारहमासे के वर्णन में समान दृश्य,ध्वनि, बिंब, प्रतीक तथा प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग किया गया है। सूफी कवियों ने प्रकृति के सजीव बिंब और कवि-प्रसूत कल्पना द्वारा विरहिणी के चित्त की व्यथा को रूपायित किया है। उन्होंने कवि-परंपरा में वर्णित अलंकारों का प्रयोग किया है। उन्होंने विरहिणी के चित्त की व्यथा को प्रकृति के व्याज से चित्रित किया है।

कुमार मनीष
हिन्दी विभाग,
पी.बी.एस. कॉलेज,
बंका, भागलपुर,
बिहार।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं कि ईश्वर का विरह सूफियों के यहाँ भक्त की प्रधान संपत्ति है, जिसके बिना साधना के मार्ग में कोई प्रवृत्त नहीं हो सकता, किसी की आँख नहीं खुल सकती'[1] सूफी कवियों ने प्रेमगाथाओं की रचना लौकिक प्रेमकथाओं के आधार पर की है। लौकिक प्रेम के संयोग और वियोग पक्ष में अलौकिक प्रेम का बीज सन्निहित होता है। अतएव, सूफी-साहित्य के लौकिक प्रेमकथा में आध्यात्मिक प्रेम का बीज निहित होता है। विरहिणी के विरह-भाव में भक्त के ईश्वर से मिलन की तड़प है। विरहानुभूति आध्यात्मिक साधना का प्रमुख साधन है। यह संसार भक्त की दृष्टि में ईश्वरमय है। उन्हें सृष्टि के सभी रूपों एवं कार्य-व्यापारों में ईश्वरीय हेतु दिखाई देता है। उन्हे जगत के सभी पदार्थ ईश्वर के विरह में जलते हुए प्रतीत होते हैं।

महत्व-

ईश्वरीय प्रेम एवं विरह की अनुभूति विषयक ज्ञान का प्रचार-प्रसार लोकहित का प्रमुख साधन है। जन-मानस में सामाजिक-सहिष्णुता, पंथ-निरपेक्षता आदि श्रेष्ठ भाव की वृद्धि में इसका महत्व सर्वविदित है। सूफी संतों का लक्ष्य प्रेम के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति का सँदेश जन-समाज हेतु अत्यंत लाभप्रद है।

अध्ययन विधि- तुलनात्मक विधि

उद्‌देश्य-

ईश्वर विषयक प्रेम एवं विरहानुभूति से जन-मानस को अवगत कराना।

हिन्दी-साहित्य में आदिकाल से ही नायक एवं नायिका का विरह-वर्णन बारहमासा में करने की परंपरा रही है। सर्वप्रथम विनयचन्द्र सूरि की 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' में बारहमासे का उल्लेख मिलता है। सूफी कवियों मुल्लादाऊद, कुतुबन एवं जायसी के महाकाव्यों में बारहमासे में नायिका का विरह-वर्णन हुआ है। इन कवियों ने विरहिणी के चित्त में परिवर्त्तन को प्रकृति के परिवर्त्तन के साथ साम्य-संबंध स्थापित कर विरहिणी की विरह-व्यथा को उद्‌घाटित किया है।

विरह के विषय में शास्त्रीय ढंग से विचार करते हुए मधुरमालती सिंह लिखती हैं "स्त्री और पुरूष के उन्मुखी भाव में, किसी अवरोध के कारण जब एक पक्ष दूसरे पक्ष की अभाव पीड़ा का अनुभव करता हुआ उसकी प्राप्ति के सुख के लिए विकल हो उठता है तब उसकी वेदना को विरह-भावना के नाम से अभिहित किया जाता है।"[2]

जायसी की नागमती और तुलसी की सीता के मध्य

विरह-भाव की तीव्रता का निरीक्षण करने पर जायसी की नागमती की विरह-भावना तुलसी की सीता की विरह-भावना से श्रेष्ठतर दिखता है। सीता विरह की असह्य-वेदना को सहते हुए कहती है-

''त्रिजटा सन बोली कर जोरी मातु बिपति संगिनि तैं मोरी।
तजौं देह करू बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई।।
आनु काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी सुनै को स्त्रवन सूल सम बानी।''[3]

जायसी नागमती की विरह-वेदना की अभिव्यंजना इन शब्दों में करते हैं-

''पवन डोलावहिं सीचहिं चोला। पहर एक समुझहिं मुख बोला।।
प्रान पयान होत को राखा? को सुनाव पीतम कै भाखा?
आजि जो मारे बिरह कै, आगि उठै तेहि लागि।
हंस जो रहा सरीर महँ, पाँख जरा, गा भागि।।''[4]

सीता और नागमती के विरह में अद्‌भुत समानता दिखती है। सीता त्रिजटा से और नागमती धाय से विरहानल की तीव्रता को अभिव्यक्त करती है। तुलसी की सीता विरहानल की तीव्रता में शरीर त्याग कर देना चाहती है, जबकि जायसी की नागमती के प्राण विरह के दु:ख से स्वयं निकल जाना चाहते हैं। उनकी आत्मा के पंख विरहानल से जल गए हैं, जिससे वह उड़ न पायी।

सीता के विरह-भाव में बाह्य-उपादान अंगारों सदृश्य दाहकता पैदा कर रहें हैं, जबकि नागमती के विरह-भाव में आंतरिक-उपादान विरह की ज्वाला को बढ़ाते हैं।

जायसी ने आषाढ़ मास से बारहमासे में विरह-भाव की अभिव्यंजना प्रारम्भ की है। इस माह में मेघ हाथियों के समूह की तरह आकाश में छा गए हैं। विरहिणी पति के आगमन की राह देख रही है। सूफी कवियों ने आषाढ़ मास के दृश्य के वर्णन में प्रकृति का सुंदर बिंब प्रस्तुत किया है। जायसी लिखते हैं-

''चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।।
धूम, साम धौरे घन धाए। सेत धजा बग पाँति देखाए।।
खड़ग बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घन घोरा।।
ओनई घटा आई चहुँ फेरी कंत! उबारू मदन हौं घेरी।''[5]

समान दृश्य, ध्वनि, प्रतीक एवं बिंब का प्रयोग कुतुबनकृत 'मिरगावती' के आषाढ़ मास के बारहमासे में दिखता है। कुतुबन लिखते हैं-

''(गरजत) गगन असाढ़ जनावा। कुँजर जूह मेघ होइ आवा।।
चहुँ जग उनै बीज चमकाई। पिय सँवरहु पावस रितु आई।।
ऊखम रितु बन जारेउ आई। हम पिउ फुनि परदेसहिं छाई।।
मरग रहा पन्थ न चलाई। अब जीउ घरी न धीर बँधाई।।''[6]

जायसी और कुतुबन के विरहिणी के चित्त की समान दशा आषाढ़ है। दोनों इस माह में पति के आगमन की प्रतीक्षा करती हैं।

जब सावन माह में संपूर्ण प्रकृति सजीव हो उठती है, तब विरहिणी का दु:ख अत्यंत दग्धकर हो जाता है। प्रकृति की हरियाली उसके विरह-विदग्ध चित्त की व्यथा को और तीव्र कर देती है। वह पति तक पहुँचने में अपने को असमर्थ पाती। है। जायसी लिखते हैं-

''सावन बरस मेह अति पानी भरनि परी, हौं बिरह झुरानी।
लाग पुनरबसु पीउ न देखा। भइ बाउरि कहँ कंत सरेखा।।
.....
परबत समुद अगम बिच बीहड़ वन बनढाँख।
किमि कै भेंटौं कंत तुम्ह? ना मोहि पाँव न पाँख।।''[7]

कुतुबन के मृगावती के चित्त की भी सावन में ठीक यही दशा है।

''फुनि सावन आयउ हरियारा। पुहुमि हरे बिरहा हम जारा।।
.....
धरती हरख चीर जनु पहिरा। बिरहा सेज हम दुख गहिरा।।
.....
पावस काल बिदेस पिउ, हौ तरूनी कुल सुद्‌ध।
सरंग सिंध कै सबद सुनि कहँ, जिउ मरत हिय मद्‌ध।।''[8]

मुल्लादाऊदकृत 'चंदायन' में सावन माह में विरहिणी चंदा के विरह की व्यथा:

''साँवन मास नैन झर लाये। अखरन नाँह दिन एकौ पाये।।
बरसि भरे भुईं खार खँदौला। भियें न सूकै चीर अमोला।।
.....
जिंह सावन तुम्ह गवनें, सो मैना चख लाग।
सिरजन कहसु लोरकहँ, माँजर केर अभाग।।''[9]

उपर्युक्त कड़वक में मुल्लादाऊद द्वारा वर्णित सावन माह में विरहिणी की व्यथा दृष्टिगत होती है। मुल्लादाऊद ने विरहिणी की विरह-भावना में प्रकृति के सरल बिंब को प्रस्तुत किया है।

सूफी कवियों ने भादों माह में विरहिणी के दु:ख को अभिव्यक्त करने हेतु भादों की गहन अँधियारी रात्रि में बिजली के चमकने का बिम्ब प्रस्तुत किया है। इस माह में विरहिणी को पति का वियोग अत्यंत कष्टकर प्रतीत होता है। मुल्लादाऊद ने विरहिणी के दु:ख से बहने वाले आँसू की व्यापकता को धरती और सागर तक भरने की कल्पना की है।

''भादों मास निसि भइ अँधियारी। रैन डरावन हौं धनि बारी।
बिजली चमक मोर हियरा भागै। मँदिर नाह बिनु डहि डहि लागै।।
संग न साथी न सखी सहेली देखि फाटि हिय मंदिर अकेली।
तिहि दुख नैन फूटि निसि बहै। धरती पूरि सायर भर रहे।।
निकर चलउँ पौं चली न जाई। भुई बूड़ि रहा जल छाई।।''[10]

कुतुबनकृत 'मिरगावती' में विरहिणी की विरह-व्यथा भी

मुल्लादाऊद के सदृश्य है। उसमें भी उसी दृश्य, बिंब और शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका 'चंदायन' में हुआ है।

विरहिणी को बिछावन साँप की तरह डँसता है। जायसी ने तुल्य उपमा का प्रयोग भादों माह के वर्णन में किया है।

''भादों सघन धार बरसाई। बीजु लवइ आधर होइ जाई।।
निसि अँधियारी भरम डर भारी हिय दरकै हौं कन्त बिसारी।
पीउ न आह जिह सरन लुकाऊँ। सेज भुअंगम फुरे डराऊँ।।
दादुर रटै औ मोर पुकारा। जिउ निकसै अब खिन न सँभारा।।
जीऊ पपीहा चख सरेखा। दूँलभ कहहु जो र तुम्ह देखा।।
लोयन गंग तरंग भइ, सेज भई खर नाउ।
करिया गुन बिन डूबा, कंत पहिलै आउ।।''[11]

जायसी के विरह-वर्णन में आँख की उपमा ओलती से दी गई है। कवि ने समान बिंब का प्रयोग किया है।

विरहिणियों की विरह-भावना में भी अद्‌भुत समानता दिखती है। उसे पति के आगमन की प्रतीक्षा है, जो उनके विरह रूपी मँझधार में सहारा बनेगा।

''भा भादों दूभर अति भारी कैसे भरौं रैनि अँधियारी।
मंदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डसा।
.....
धनि सूखै भरे भादों माहा। अबहुँ न आएन्हि सध्चेन्हि नाहा।।
पुरवा लाग भूमि जल पूरी आक जवास भई तस झूरी।
.....
धनि जोबन अवगाह महँ। दे बूड़त पिउ! टैक।।''[12]

आश्विन मास में जगत् के सभी बिछुड़े साथी आपस में मिल जाते हैं। किंतु विरहिणी के प्रियतम नहीं आते हैं। मुल्लादाऊद 'चंदायन' में आश्विन माह में विरहिणी के दु:ख को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं कि आश्विन माह के आने पर अगस्त नक्षत्र उदित हुआ, जलाशय से जल घट गए, किंतु विरहिणी के प्रियतम न आये। प्रकृति के बाह्य-उपादान विरहिणी के दु:ख को और बढ़ाते हैं। मनुष्य के अंत:करण में जो अभाव का दु:ख होता है, वह संसार के सभी सुख-साधनों के उपलब्ध होने पर और बढ़ जाता है, क्योंकि ये सुख-साधन सदैव प्रियतम की अनुपस्थिति का स्मरण दिलाते हैं।

''चढ़ा कुआर अगस्त चितावा। नीर घटै पै कन्त न आवा।।
.....
रहा चिंतहि घर बिच, सिरजन भल दिन लायहु।।''[13]

कुतुबन 'मिरगावती' में विरहिणी की विरह-वेदना को अभिव्यक्त करते हुए काँस के वन के फूलने और सारस, खंजन आदि पक्षियों के आने की बात कहते हैं। अगस्त का उगना, जल का घटना आदि सामान्य प्राकृतिक घटनाओं के दुहराने की बात कुतुबन करते हैं। कुतुबन और जायसी ने रूपक अलंकार में विरहिणियों की विरह-भावना की अभिव्यंजना की है। जिसमें हाथी विरह, शरीर वन, प्रियतम सिंह, रूपक के अवयव हैं।

जायसी के आश्विन माह का विरह-वर्णन कुतुबन के आश्विन माह के विरह-वर्णन के सदृश्य ही है। कुतुबन लिखते हैं-

''आसिन दरस काँस बन फूले। खिंडरिज आये सारस बोले।।
उवै अगस्त घटा जग नीरू। हौं भरि गाँग न पायउँ तीरू।।
.....
बिरह हस्ति तन सालै, ध्य करै चित चूर।
बेगि आइ, पिउ! बजहु, गाजहु होइ सदूर।।''[14]

जायसी लिखते हैं-

''लाग कुवार नीर जग घटा। अबहूँ आउ कंत तन लटा।।
.....
बिरह हस्ति तन सालै, ध्य करै चित चूर।
बेगि आइ, पिउ! बजहु, गाजहु होइ सदूर।।''15

मुल्लादाऊद 'चंदायन' में कार्त्तिक माह में विरहिणी की विरह-व्यथा की अभिव्यंजना करते हुए लिखते हैं कि कार्त्तिक में रात्रि निर्मल होती है। वह विरहिणी को बहुत सताती है। विरहिणी कंत के घर लौटने की प्रतीक्षा करती है। संसार में सर्वत्र दिवाली पर्व मनाया जा रहा है, परंतु उनके लिए कंत के बिना सर्वत्र अंधकार छाया है। उसके प्रकाश को चाँद लेकर चला गया है। वह सन्देश वाहक से प्रार्थना करती है कि वे जाकर प्रियतम से मेरा सँदेश सुनायें और देवउठान पूजा के बहाने घर आने को कहें।

''कातिक निरमल रैन सुहाई। जोन्ह दाध हौं खरी सताई।।
.....
होइ देवउठान बीर, पूजा मिस घर आयहु।।''[16]

कुतुबन 'मिरगावती' में विरहिणी के कार्त्तिक मास में विरह-व्यथा का वर्णन करते हुए समान बिम्ब वर्णन करते हुए तुल्य बिम्ब का प्रयोग करते हैं-

'' कातिक सरद रैन उजियारी। ससि सीतल हौ बिरहै मारी।
सेत सुपेती सेज न भावइ। अमिय तेज ससि बिख बरसावइ।।''[17]

संसार के वे सभी पदार्थ जो जगत् को शीतलता प्रदान करते हैं विरहिणी के लिए विष के समान हो गए हैं।

जायसी ने भी कार्तिक माह में विरहिणी के विरह दु:ख को समान तुल्य बिंब में प्रस्तुत किया है। चंद्रमा जगत को शीतलता प्रदान करता है, परंतु नागमती के लिए वह दाह उत्पन्न करने वाला हो गया है। दीपावली पर्व में नागमती की सखियाँ दीपावली पर्व में अंग मोड़-मोड़ कर गीत गा रही हैं, जबकी वह प्रियतम के बिना अकेली सूख रही है। वह योगिनी के रूप में भस्म लगाकर बैठी है।

'' कातिक सरद चंद उजियारी जग सीतल, हौं बिरहै जारी।
.....
हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि।।''[18]

मुल्लादाऊद 'चंदायन' में विरहिणी के विरह दु:ख की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं कि 'अगहन माह में रात बड़ी और दिन छोटा होने लगता है। विरहिणी का शरीर विरह दु:ख से क्षीण होता जा रहा है। ठंडी हवा चलने से शरीर में ठंड लगती है। शिशिर का आगमन होता है। परंतु उसके पति नहीं आते हैं। विरह शत्रु होकर शरीर में लगता है और उसे जलाता है। दग्धकारी काम ने उसका मान बिगाड़ दिया है। परमात्मा करे ऐसा न हो।

'' अगहन रैन बाढ़ि दिन खीनाँ। दिन पर दिन जाइ तन छीनाँ।
.....
काम लुबुधरा मान बिगारू। अस जीउँ। जनि होइ करतारू।।''[19]

कुतुबन 'मृगावती' में विरहिणी के दु:ख का वर्णन मुल्लादाऊद की कवि-परंपरा के आधार पर करते हैं। रात्रि में विरहिणी का दु:ख और बढ़ जाता है, क्योंकि कोई भी दु:ख रात्रि में बढ़ जाता है।

विरहिणी कहती है कि यौवन की छाँह पल में बीत जाती है। गए हुए दिन लौट कर नहीं आते हैं। विरहिणी का शरीर जो विरह से रोगी हो रहा है, उसका भस्म योगी लगाते हैं। हे प्रिय! मेरा जन्म व्यर्थ व्यतीत हो रहा है, जब तक यौवन है आकर सुख-विलास करो।

''अगहन कह जग सीउ जनावा। हेंव आइ पै कन्त न आवा।।
दुख बाढ़ेउँ निसि सँग किंह पाई। सुख र खीन हम दिन बरजाई।।
बिरहैं तन पण्डुर जो होई। जोगी भसम करत है सोई।।
आहर जनम जात है नाँहाँ। बिरसु आइ भर जोबन माहाँ।।
दूलभ जिमि जल अँजुली, तिमि जोबन कर नेम।
खिन खिन गहै जाइ दिन, गहहु नेम क पेम।।''[20]

जायसी ने चंदायन और मृगावती में वर्णित विरहिणी के विरह-दु:ख के सदृश्य ही नागमती की विरह-व्यथा का वर्णन किया है। वह कहती है कि हे भौंरा! हे काग! मेरे प्रियतम से जाकर यह सँदेश कहना कि वह विरहिणी जलकर मर गई। उसी के धुँआ लगने से मैं काला हो गया हूँ।

''पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग!
सो धनि बिरहे जरि मुई, तेहि क धुवाँ लाग।।''[21]

मुल्लादाऊदकृत के चंदा में विरहिणी विरह-दु:ख को अभिव्यक्त करते हुए कहती हैं- पूस माह आया, मैं प्रियतम का बाट जोहती हूँ। रात और दिन में क्षण-भर भी न सोई हूँ।

वह सिरजन से पति के घर आगमन हेतु संदेश पहुँचाने को कहती है। उसे विरह में उसे कपड़े नहीं सुहाते हैं। प्रियतम पुन: उस पथ पर लौट आयें, जिस पर वह बाट जोहती है।

''आये पूस साईं पथ जोऊँ। खिन एक रात देवस न सोऊँ।।
सिरजन किंह पर सीउ सुहारब। मरन न जाइ जिय कै मारब।।
घर-घर सौर-सुपेती साजहिं। घिरित माँस बहु भातिहँ खाजहिं।।
मैं तन जो चीर न सुहाये। पीउ पुनि लौटि जस लाये।।''[22]

कुतुबन 'मिरगावती' में कुतुबन पूस मास में विरहिणी का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

''दूलभ पूस तुलानेउ आई। पिय बियोग आवस र सताँई।।
परै तुषार खीर जस जामाँ। सेज हींउ अरकत है रामाँ।।
सेज अकेल कहाँ पिउ पावऊँ। उर कुच भवो पुरूख किह लावऊँ।।
जाड़ सौर भौ बिरह सुपेती दुहुँ दुरजन बिच भयऊँ अचेती।''[23]

जायसी पूस माह में विरहिणी की वेदना को अभिव्यक्त करते हैं। नागमती कहती है कि पूस माह में जाड़े से तन थर-थर काँपता है। सूर्य दक्षिण दिशा में लंका को दबाता है। ऐसे में विरह और बढ़ गया है। ठंड कठिन हो गया है। कँप-कँप कर मर रही हूँ, ठंड और विरह प्राण हर लेते हैं। प्रियतम कहाँ हैं? उसके हृदय से लग जाऊँ। रास्ता अपार है, वह दिखता नहीं है। जाड़े के ओढ़ने और बिछाने के वस्त्रों में जूड़ी आती है, मानो सेज हिमालय के बर्फ में डूबा हो। चकवी रात में बिछुड़कर दिन में मिल जाता है, मैं दिन और रात विरह में कोयल बनकर पुकार रही हूँ।

''पूस जाड़ थर थर तन काँपा। सुरूज जाइ लंका दिसि चाँपा।।
बिरह बाढ, दारून भा सीऊ। कँपि कँपि मरौं, लेइ हरि जीऊ।।
कंत कहाँ लागौं औहि हियरे। पंथ अपार, सूझ नहीं नियरे।।
सौंर सवेती आवै जूड़ी जानहु सेज हिवंचल बूड़ी।
चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं दिन राति बिरह कोकिला।।''[21]

सभी सूफी कवियों के पूस माह के विरह-वर्णन में विरहिणियों के आँसू बहाने के बिम्ब का चित्रण हुआ है।

'चंदायन' में माघ मास में विरहिणी के दु:ख का वर्णन- माघ मास में रात्रि में तुषार पड़ता है। शरीर की हड्डियाँ और पशुओं की डोरी डोलती हैं। दाँत काँपते हैं, आँख से आँसू चलते हैं। विरह रूपी अँगीठी हृदय में जल रही है। पहला विरह और दूसरा तुषार। हमारे प्राण पर विरह भार के समान है। तुम्हारे बिना उन पत्तों के समान हो गयी हूँ, जैसे कमल का पत्ताा जल कर हो जाता है। पुन: उसे अंग से लगाऊँ। चाँद सूरज को लेकर चला गया है। उसे कहाँ पाउँ?

'' माह माँस निसि परै तुसारू। कँपहि हार डोर थनहारू।।
काँपहि दसन नीर चख झरा। बिरह अँगीठी हींउर धरा।।
एक बिरहें अरू दुहेऊँ तुसारा। भार बिरह यह जीउँ हमारा।।
तुम बिनु पात अइस हौं भयी पुरई जस भूँज दहि गयी।''[22]

कुतुबन मिरगावती में माघ मास में विरहिणी के दु:ख को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं- अब कठिन माह दु:ख देने वाला आया। क्या करूँ सँभाला नहीं जाता है। पवन झलकता है,

धू-धू कर मर रही हूँ। इस माह में विरहिणी पति के विरह के ताप में जलती है। दाँत ठंड से काँपते हैं, ठंड ने घना रूप ले लिया है। सूर्य रूपी प्रियतम आयें, तो वह भागे। हे प्रियतम ! मेरे ऊपर आकर तपो। जिससे दु:ख रूपी छाँह सात-पताल चला जाय।

''अब र माँह आयउ दु:ख भारी काह करौं नहिं जाइ सँभारी
झरकै पवन मरौं धुधुआई। तपौं अकेल जाड़ न जाई।
कपौंहि दसन सीउ घन लागै। सूर होइ पिय तपै त भागै।।
तपहु आइ मौंहि ऊपर नाहाँ। सात पतार जाइ दु:ख छाहाँ।।''[23]

विरहिणी प्रियतम से राम के समान होकर विरह का दलन करने को कहती है। जायसी की नागमती विरहकाल में अपनी व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए कहती है- माघ आया और पाला पड़ने लगा। जाड़े के मौसम में विरह काल के समान हो गया है। शरीर के अंग-अंग को जैसे-जैसे रूई से ढँकते हैं, वैस-वैसे हहर-हहर कर हृदय अधिक काँपता हैं। हे प्रियतम! सूर्य के समान आकर तपो। तुम्हारे बिना मेरा जाड़ा नहीं छूटता है। इस माह में रस का मूल उत्पन्न होता है। मेरा यौवन फूल और तुम भौंरे के समान हो।

''लागेउ माघ परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला।।
पहल पहल तन रूई झाँपै। हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै।।
आइ सूर होइ तपु, रे नाहा। ताहि बिनु जाड़ न छूटै माहा।।
एहि माह उपजै रसमूलू। तूँ सो भौंर मोर जोबन फूलु।।''[24]

जायसी की नागमती को प्रियतम के बिना वस्त्र शरीर में बाण सदृश्य लगते हैं। सभी सूफी कवियों ने माघ में विरहिणी के विरह दु:ख का वर्णन प्रकृति के ब्याज से किया है।

'चंदायन' मे 'मुल्लादाऊद' फाल्गुन में विरहिणी की अवस्था का वर्णन करते हुए लिखते हैं- 'फाल्गुन में ठंड चारों ओर से चलती है। विरहिणी अपने भाग्य को सराहेगी यदि उनके प्रियतम आ जाएँ। वह ठंड से मर रही है। प्रियतम आकर गले लगाये तो वह जीवित हो उठेगीं घर-घर में बालाएँ सौंदर्य सुहाग से सज रहीं हैं। वे मुँह में पान और आँखों में काजल, तन में वस्त्र और सिर पर सिंदूर लगाती हैं। विरहिणी रक्त के आँसू रो रही है, चोली रक्त से लाल हो गया है। हे सिरजन! जाकर मेरे कंत से कह दो कि तुम्हारी प्रियतमा होली में जलकर राख हो गयी है।

''रकत रोइ मै। अस कै, चोलि चीर रतनार।
कहु सिरजन तोर मैनाँ, भइ होरी जरि छार।।''[25]

कुतुबन 'मिरगावती' में फाल्गुन में विरहिणी के चित्त की दशा का वर्णन करते हैं। इस माह में विरहिणी की यह इच्छा है कि जलकर भस्म हो जाऊँ और उड़कर प्रियतम के निकट चली जाऊँ। विरह आकर उन्हें विविध प्रकार से सताता है। फाल्गुन में वृक्ष के पत्ते झर कर गिर गए, यह यौवन मतवाला हो गया। फिर भी प्रियतम नहीं आए।

''फागुन फाग जगत सब खेला। होरी माँझ मैं र जिउ मेला।।
जरि कै भसम हौं यहि आसा। मकुँहि उड़ाइ जाँउ पिय पासा।।''[26]

कुतुबन प्रकति से विरहिणी के चित्त की तुलना करते हैं। कुतुबन के विरहिणी को सौत का दु:ख भी सताता हैं।

जायसी की नागमती को सौत को भी दु:ख सताता है। जायसी फाल्गुन में विरहिणी के विरह दु:ख का वर्णन करते हुए लिखते हैं- फाल्गुन में पवन झकोरे से बहता है। चारों ओर से ठंड चलती है, जो सहा नही जाता है। विरहिणी का तन पत्ते की तरह पीला हो गया है। उस पर विरह झकझोरा देता है। वृक्ष झरते हैं। प्रकृति और नागमती की सखियाँ उमंग मना रही हैं। प्रेम की उच्च-दशा तब कही जा सकती है, जब अहम् का सर्वथा लोप हो जाता है। विरहिणी को अनुभव होता है कि जैसे उसके शरीर में किसी ने होली लगा दी है। रात-दिन उनके हृदय में यह चिंता है कि वह प्रियतम के गले लगे। वह कामना करती है कि यह तन जलाकर छार कर दूँ। और पवन से कहूँ कि उड़कर उस मार्ग पर पड़ो, जहाँ प्रियतम पाँव रखेंगे।

''जो पै पीउ जरत अस पावा। जरत मरत मोहिं रोष न आवा।।
राति दिवस बस यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत अब तोरे।।
यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन! उडाव'।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाव।।''[27]

कुतुबन चैत में विरहिणी के दु:ख की व्यंजना करते हुए लिखते हैं कि चैत ने चारों ओर पृथ्वी पर प्रभाव फैला दिया है। विरह हमारे शरीर को जला रहा है। वनस्पतियाँ मुकुलित हो गयी हैं। प्रियतम रूपी भौंरा कहीं मधुपान में भूल गया है। कोयल पंचम गान कर रहे हैं। यौवन रूपी कली ने मुँह खोल दिया है। अर्थात् वह विकसित हो चुका है। यह जन्म व्यर्थ जा रहा है। वन में जो मालती है। वे कुँभला गई हैं।

''चैत चहूँ दिसि करहि सँहारा। बिरहा हम तन खोइ खोइ जारा।।
मौली बनस्पति जग फूला। पिउ मकरन्द और कँह भूला।।
काकल फिरि कै पंचम बोला। जोबन कली बिगस मुँह खोला।।
यहौ जनम बिरथहिं जाई। आस जेउँ मालती कुँबलाई।।''[28]

जायसी नागमती के चैत में विरह का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

''चैत बसंता होइ धमारी मोहिं लेखे संसार उजारी।
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौं बन ढारै।।
बूड़ि उठै सब तरिवर पाता। भीजि मजीठ, टेसु बन राता।।
बौरे आम फरै अस लागे। अबहुँ आउ घर, कंत सभागे।।''[29]

चैत के बसंत का धमाल मचा है। विरहिणी के लिए संपूर्ण संसार उजाड़ है। कोयल बिरह में काम के पाँच बाण मारती है। वे सारे वन में रक्त के आँसू गिराते हैं। उसमें वृक्ष के पत्ते डूब गए हैं मजीठ भी भींग गया और वन के टेसू भी लाल हो गए। कुतुबन और जायसी ने इस माह में प्रकृति के रंग के साथ विरहिण

ी के यौवन का चित्रण किया है। बैशाख में कुतुबन विरहिणी की विरह-व्यंजना करते हुए लिखते हैं कि

''बैसाखैं फर तरूवर लागे। बिरसु आइ कन्त सुभागे।।
अमिय सुफल राखेउ तुम जोगू। बेग आइ रस मानहु भोगू।।
अबलौंहि मैं राखी अँबराई। अब बूतैं नहिं जाइ उड़ावा।।
कब लग बिरह उड़ावों नाहाँ। अलप बयस सत रहै नहिं बाहाँ।।
रीस परे बहि नारि लगि, देखि हाथ औरौंहि।।
हम पिय हरख बिसारेउ दीतसि बिरह गराहँ।।''[30]

बैशाख में वृक्ष में फल लग गए हैं। हे प्रियतम! आकर भोग-विलास करो। अमृत के समान सुंदर फल तुम्हारे लिये रखा है। शीघ्र आकर उसका रस-पान करो। अब तक मैंने यौवन की रक्षा की अब दुर्जन के आने से उसे नहीं रख सकता। विरह रूपी सुग्गा उसे खाना चाहता है। मुझे शक्ति नहीं है कि उसे उड़ा पाऊँ। कब तक विरह रूपी सुग्गा को उड़ाऊँ। मेरी आयु अल्प है और बाँह में शक्ति नहीं है। जायसी बैशाख में विरहिणी के दु:ख को प्रकट करते हुए लिखते हैं कि बैशाख आया और ताप बढ़ गया है। चंदन के समान शरीर का वस्त्र आग हो गया है। सूर्य जलता हुआ उत्तरायण हुआ। विरहाग्नि ने सामने होकर मेरी ओर रथ हाँक दिया है। हे प्रियतम! जलते हुए वज्राग्नि में छाँह करो। विरह रूपी अँगारे को आकर बुझाओ। तुम्हारे दर्शन से यह नारी शीतल होगी। आकर आग को फुलवारी कर दो। मैं भाड़ में जल रही हूँ। जैसे भाड़ के अन्न, जल-जल कर भी भाड़ के गर्म बालू को नहीं छोड़ते हैं, वैसे ही विरह में जल-जल कर भी उसे तज नहीं पाती हूँ।

''भा बँखास तपनि अति लागी चोआ चीर चँदन भा आगी।
सूरूज जरत हिंवचल ताका। बिरह बजागि सौंह रथ हाँका।।
जरत बजागिनि करू, पिउ छाहाँ। आइ बुझाउ, अँगारन्ह माहाँ।।
तेहि दरसन होइ सीतल नारी आइ आगि तें करू फुलवारी।
लागिउँ जरै जरै जस भारू। फिरि फिरि भूँजेसि, तजिउँ न बारू।।''[31]

इधर जेठ में सूर्य के ताप से पृथ्वी जलती है और उधर काम के ताप से विरहिणी जलती है। हे शीतल सम प्रियतम! मेरे पास आओ। मेरा ताप शर्बत पीने से चला जायेगा। मलयागिरि पर्वत के समान होकर आओ। ग्रीष्म के जलन से मुझे छाँह प्रदान करो। हे संदेशवाहक! जाकर मेरे प्रियतम से कहना कि बादलों के समूह बनकर आओ नहीं तो विरह रूपी सूर्य दुर्जन जलाकर मुझे भस्म कर देगा।

''पीउ सीतल आवहु हम पासा। तपत जाइ खँडवानि पियासा।
गिरि मलया होइ आवहु नाहाँ। गिरखम जरत करहु मुहि छाहाँ
दूलभ कहियहु कन्त सैउ, उनै आउ घनघट्ट।
नाहुत सूर बिरह मुहि, दुरजन जारि करहि दहिघट्ट।।''[32]

निष्कर्ष-

सूफी संतों ने विरह-वर्णन के द्वारा आत्मा और परमात्मा के मध्य के चिर-संबंध को निरूपित किया है। सूफी साधना में आत्मा-परमात्मा के मध्य के संबंधा को प्रेमी-प्रेमिका के राग-विरह संबंध द्वारा चित्रित किया जाता है। विरह की तीव्रता में आत्मा की परमात्मा से मिलन की आतुरता होती है। भक्त को भगवान् के पाने की अभिलाषा होती है। इस अभिलाषा की पूर्ति हेतु साधक के अंत: करण में विरह की तीव्रता की अनुभूति अत्यंत अनिवार्य है। सूफी कवियों द्वारा सूफी-साधना के विरह-तत्व में इस विशेषता का सफलतापूर्वक निरूपण हुआ है।

संदर्भ:-

1. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, काशी नगरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, तृतीय संस्करण, पृ0-53-54
2. सिंह, मधुरमालती, आधुनिक हिंदी काव्य में विरह-भावना, आत्माराम एंड संस, दिल्ली,1963, प्रथम संस्करण
3. दास, गोस्वामी तुलसी, रामचरितमानस, सुंदरकांड, दो0-13, सो0-12 पृ0 468-469
4. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-143, दो0-2
5. वही, पृ0-144, दो0-4
6. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-338, कड़वक-333
7. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, पदमावत, नागमती-वियोग खंड, पृ0-144, दो0-5
8. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन,पृ0-332, कड़वक-322
9. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मौलानादाऊद दलमईकृत चंदायन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,1964,दिल्ली,पृ0-304, कड़वक-402
10. वही, पृ0-305, कड़वक-403
11. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-333, कड़वक-323
12. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-145, दो0-6
13. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मौलानादाऊद दलमईकृत चंदायन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,1964,दिल्ली,पृ0-306, कड़वक-404
14. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन,पृ0-333, कड़वक-324
15. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-145, दो0-7
16. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मौलानादाऊद दलमईकृत चंदायन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,1964,दिल्ली,पृ0-305, कड़वक-404
17. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन,पृ0-334, कड़वक-325
18. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती, वियोग खंड, पृ0-145, दो0-8
19. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मौलानादाऊद दलमईकृत चंदायन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,1964,दिल्ली,पृ0-307, कड़वक-406
20. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद,

प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-335-326, दो0-9
21. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मौलानादाऊद दलमईकृत चंदायन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,1964,दिल्ली, पृ0-307, कड़वक-407
22. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-335, कड़वक-326
23. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-146, दो0-9
24. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मौलानादाऊद दलमईकृत चंदायन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,1964,दिल्ली,पृ0-307, कड़वक-407
25. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-335, कड़वक-327
26. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-146, दो0-11
27. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मौलानादाऊद दलमईकृत चंदायन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,1964,दिल्ली,पृ0-308, कड़वक-409
28. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-336, कड़वक-329
29. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-146, दो0-11
30. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-337, कड़वक-330
31. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-146, दो0-11
32. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-338, कड़वक-331
33. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-147, दो0-14
34. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-338, कड़वक-331

◆◆◆

पृष्ठ 48 का शेष

7. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान हंस जनवरी-फरवरी मार्च 1991, अक्षर प्रकाशन, पृ0 50।
8. वही, पृ0 55।
9. वही, पृ0 58।
10. वही, पृ0 69।
11. कठगुलाब-मृदुला गर्ग भारतीय ज्ञानपीठ सन् 2000 पृ0 56।
12. वही, पृ0 97।
13. वही, पृ0 98।
14. वही, पृ0 104।
15. वही,
16. वही, पृ0 147।
17. वही, पृ0 194।
18. वही, पृ0 194।
19. एक जमीन अपनी, चित्र मुद्रगल प्रभात प्रकाशन 1990 पृ0 19।
20. वही,
21. वही, पृ0 196।
22. वही, पृ0 205।
23. निष्कवच राजी सेठ भारतीय ज्ञानपीठ 1995 पृ0 84-85।
24. एक पत्नी के नोट्स ममता कालिया मयूर पेपर बैक्स छाया-मयूर अक्टूबर दिसम्बर, 1994 पृ0 333।
25. आंवा-चित्र मुद्गल सामयिक प्रकाशन 1999 पृ0 47-48।
26. छिन्नमस्ता प्रभा खेतान हंस जनवरी-फरवरी मार्च, 1991 पृ0 55।
27. वही,
28. वही, पृ0 58।
29. निष्कवच, राजी सेठ, भारतीय ज्ञानपीठ, 1995 पृ0 91।
30. वही, पृ0 92।
31. पितृ सत्ता के नये रूप-ताकतवर औरत की मजबूरियाँ अभयकुमार दुबे-हंस अक्षर प्रकाशन मार्च, 2001 पृ0 37।
32. कॉलगर्ल्स- मूल समस्या तथा विचार पद्धति-डॉ0 प्रोमिला कपूर हिन्द पॉकेट बुक्स, 1993 पृ0 29।
33. बन्द गलियों के विरूद्ध, स्त्री का भविष्य अर्चना वर्मा, संपादक मृणाल पाण्डे/क्षमा शर्मा राजकमल प्रकाशन, 2001 पृष्ठ 48।
34. वही,
35. औरत अस्तित्व और अस्मिता, अरविंद जैन सारांश प्रकाशन, 2000 पृ050
36. वही,
37. बन्द गलियों के विरूद्ध, स्त्री का भविष्य अर्चना वर्मा, संपादक मृणाल पाण्डे/क्षमा शर्मा राजकमल प्रकाशन, 2001, पृष्ठ 47।
38. आवां, चित्र मुद्गल सामयिक प्रकाशन, 1997, पृ0 461।
39. वही, पृ0 205

◆◆◆

पृष्ठ 53 का शेष

4. वर्तमान, अनूप- 560
5. साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना, नरेन्द्र सिंह, पृ0 150
6. गुरू कुल शोध भारती, अक्टूबर 2010, अंक- 14 पृ0- 11
7. ऋग्वेद, 10-191-2
8. वही;, 10-191-4
9. वही;, 5-60-5
10. गुरूकुल, शोध भारती, अक्टूबर 2010, अंक- 14, पृ0- 10
11. उत्पीड़न की यात्र, लक्ष्मीनारायण सुध्कर, पृ0 61
12. अथर्ववेद, 12-1-14
13. ऋग्वेद, 5-66-6
14. वही;, 5-82-2
15. माधवी, भूपेन्द्र शुक्ल, पृ0 119
16. मुक्तिबोध रचनावली प्रथम भाग, नेमिचन्द्र जैन, पृ0- 211
17. पुरानी जुतियों का कोरस, नागार्जुन, पृ0 30
18. ऋग्वेद, 1-89-8
19. वही;, 10-124-5
20. मुक्तिबोध रचनावली, खण्ड- 5, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, सं0 नेमिचन्द्र, पृ0- 76
21. सहृदय, जनवरी-मार्च, 2011, अंक- 7, पृ0- 23

◆◆◆